अध्याय
9

इत्यादि

यशोदानन्दन अखोरी

'शब्द-समाज' मे मेरा सम्मान कुछ कम नहीं है। मेरा इतना आदर है कि वक्ता और लेखक लोग मुझे जबरदस्ती घसीट ले जाते हैं। दिन भर में , मेरे पास न जाने कितने बुलावे आते हैं। सभा-सोसायटियों में जाते-जाते मुझे नींद भर सोने की छुट्टी नही मिलती। यदि मैं बिना बुलाये भी कहीं जा पहुँचता हूँ तो भी सम्मान के साथ स्थान पाता हूँ। सच पूछिए तो ''शब्द समाज'' में यदि मैं, 'इत्यादि' न रहता, तो लेखकों और वक्ताओं की न जाने क्या दुर्दशा होती। पर हाँ! इतना सम्मान पाने पर भी किसी ने आज तक मेरे जीवन की कहानी नहीं कही। संसार में जो जरा भी काम करता है उसके लिए लेखक लोग खूब नमक-मिर्च लगा कर पोथे के पोथे रंग डालते हैं; पर मेरे लिए एक शब्द भी किसी की लेखनी से आज तक नहीं निकला। इसमें एक भेद है।

यदि लेखक लोग सर्व-साधारण पर मेरे गुण प्रकाश करते तो उनकी कोई योग्यता की कलई जरूर खुल जाती; क्योंकि उनकी शब्द- दरिद्रता की दशा में मैं उनका एक मात्र अवलंब हूँ। अच्छा ,तो आज मैं चारों ओर से निराश होकर आप ही अपनी कहानी कहने और गुणावली गाने बैठा हूँ। आप मुझे, ''अपने मुँह मियाँ मिट्ठू'' बनने का दोष न लगावें। मैं इसके लिए क्षमा चाहता हूँ।

अपने जन्म का सन्, संवत, दिन मुझे कुछ भी याद नहीं। याद है इतना ही कि जिस समय 'शब्द का महा अकाल' पड़ा था उसी समय मेरा जन्म हुआ था। मेरी माता का नाम 'इति' और पिता का 'आदि' है। मेरी माता अविकृत 'अव्यय' घराने की है। मेरे लिए यह थोड़े गौरव की बात नहीं है; क्योंकि भगवान फणींद्र की कृपा से 'अव्यय' वंशवाले, प्रतापी महाराज 'प्रत्यय' के सभी अधीन नहीं हुए। वे सदा स्वाधीनता से विचरते आए हैं।

मैं जब लड़का था तब मेरे माँ- बाप ने एक ज्योतिषी से मेरे अदृष्ट का फल पूछा था। उन्होंने कहा था कि यह लड़का विख्यात और परोपकारी होगा; अपने समाज में यह सबका प्यारा बनेगा; पर दोष है तो बस इतना ही कि यह कुँवारा ही रहेगा। विवाह न होने से इसके बाल बच्चे न होगे। यह सुनकर माँ- बाप के मन में पहले तो थोड़ा दुख हुआ; पर क्या किया जाय? होनहार ही यह था। इसलिए सोच छोड़कर उन्हें संतोष करना पड़ा। उन दोनों ने , अपना नाम चिरस्मरणीय करने के लिए (मुझसे ही उनके वंश की इतिश्री थी) मेरा नाम कुछ और नहीं रखा। अपने ही नामों को मिलाकर वे मुझे पुकारने लगे। इससे मैं 'इत्यादि' कहलाया।

पुराने जमाने में मेरा इतना नाम नहीं था। कारण , यह कि एक तो लड़कपन में थोड़े लोगों से मेरी जान पहिचान थी; दूसरे उस समय बुद्धिमानों के बुद्धि भण्डार में शब्दों की दरिद्रता भी न थी। पर जैसे-जैसे शब्द-दारिद्रय बढ़ता गया, वैसे-वैसे, मेरा सम्मान भी बढ़ता गया। आजकल की मत पूछिए। आजकल मैं ही मैं हूँ। मेरे समान सम्मान वाला इस समय मेरे समाज में कदाचित विरला ही कोई ठहरेगा। आदर की मात्रा के साथ मेरे नाम की संख्या भी बढ़चली है। आज कल मेरे अनेक नाम है- भिन्न-भिन्न भाषाओं के 'शब्द समाज' में मेरा नाम भी भिन्न-भिन्न है। मेरा पहनावा भी भिन्न-भिन्न है- 'जैसा देस वैसा ही भेस'बनाकर मैं सर्वत्र विचरता हूँ। आप भी जानते ही होंगे कि सर्वेश्वर ने हमें 'शब्दों' को सर्वव्यापक बनाया है। इसी से मैं, एक ही समय, अनेक ठौर काम करता हूँ। इस समय विलायत की पार्लियामेंट महासभा में डटा हूँ, और इसी घड़ी भारत की पंडित मंडली में भी विराजमान हूँ। जहाँ देखिए वहीं परोपकार के लिये उपस्थित हूँ।

मुझ में यह एक भारी गुण है, कि क्या राजा,क्या रंक, क्या पंडित, क्या मूर्ख, किसी के घर जाने आने में मैं संकोच नहीं करता; और अपनी मानहानि नहीं समझता। अन्य 'शब्दों' में यह गुण नहीं। वे बुलाने पर भी कहीं जाने-आने में बड़ा गर्व करते हैं; बहुत आदर चाहते हैं। जाने पर सम्मान का स्थान न पाने पर रूठ कर उठ भागते हैं। मुझमें यह बात नहीं। इसी से मैं सबका प्यारा हूँ।

परोपकार और दूसरे की मान-रक्षा तो मानो मेरा धंधा ही है। यह किए बिना मुझे एक पल भी कल नहीं पड़ती। संसार में ऐसा कौन है जिसके अवसर पड़ने पर मैं काम नहीं आता? निर्धन लोग जैसे भाड़े पर कपड़ा लत्ता पहनकर बड़े-बड़े समाजों में बड़ाई पाते हैं, कोई उन्हें निर्धन नहीं समझता, वैसे ही मैं भी छोटे-छोटे वक्ताओं और लेखकों की दरिद्रता झटपट दूर कर देता हूँ। अब दो-एक दृष्टान्त लीजिए।

वक्ता महाशय वक्तृता देने को उठ खड़े हुए हैं। अपनी पंडिताई दिखाने के लिये सब शास्त्रों की बात थोड़ी बहुत कहनी चाहिए। पर शास्त्र का जानना तो अलग रहा, उन्हें किसी शास्त्र का पन्ना भी उलटने का सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ। इधर-उधर से सुन कर दो-एक शास्त्रों और शास्त्रकारों का नाम भर जान लिया है। कहने को तो खड़े हुए है, पर कहें क्या? अब लगे चिन्ता के समुद्र में डूबने उतरने; और मुँह पर रूमाल लिये खाँसते खूँसते इधर-उधर ताकते। दो-चार बूँद पानी भी उनके मुखमंडल पर झलकने लगा। जो मुख कमल पहले उत्साह सूर्य की किरणों से खिल उठा था,अब ग्लानि और संकोच का पाला पड़ने से मुरझा गया। उनकी ऐसी दशा देख मेरा हृदय दया से उमड़ आया। उस समय मैं बिना बुलाए उनकी सहायता के लिए जा खड़ा हुआ; और मैंने उनके कानों में चुपके से कहा- ''महाशय,कुछ परवा नहीं आप की मदद के लिये मैं हूँ। आपके जी में जो आए आरंभ कीजिए; फिर तो मैं सब कुछ निबाह लूँगा।'' मेरे ढाढ़स बँधाने पर बेचारे वक्ताजी के जी में जी आया। उनका मन ज्यों-का-त्यों हरा भरा हो उठा। थोड़ी देर के लिए जो उनके आकाशमंडल में चिन्ता चिह्न का बादल देख पड़ता था वह मेरे ढाढ़स के झकोरे से एक बारगी फट गया; और उत्साह का सूर्य फिर निकल आया। अब लगे वे यों वक्तृता झाड़ने- ''महाशयो'', मनु इत्यादि धर्मशास्त्रकार, व्यास इत्यादि पुराणकार, कपिल इत्यादि दर्शनकारों ने कर्मवाद, पुनर्जन्मवाद इत्यादि जिन-जिन दार्शनिक तत्व रत्नों को भारत के भण्डार में भरा है, उन्हें देखकर मैक्समूलर इत्यादि पाश्चात्य पंडित लोग बड़े अचम्भे में आकर चुप हो जाते हैं। इत्यादि-इत्यादि।''

यहाँ इतना कहने की जरूरत नहीं कि वक्ता महाशय धर्मशास्त्रकारों में केवल मनु, पुराणकारों में केवल व्यास, दर्शनकारों में केवल कपिल का नाम जानते हैं; और उन्होंने कर्मवाद, पुनर्जन्मवाद का नाम भर सुन लिया है। पर देखिए मैंने उनकी दरिद्रता दूर कर उन्हें ऊपर से कैसा पहनावा पहनाया कि भीतर के फटे पुराने और मैले चीथड़े को किसी ने नहीं देखा।

और सुनिए - किसी समालोचक महाशय का किसी ग्रंथकार के साथ बहुत दिनों से मनमुटाव चला आता था। जब ग्रंथकार की कोई पुस्तक समालोचना के लिए समालोचक साहब के आगे आई तब वे बड़े प्रसन्न हुए, क्योंकि यह दाँव तो बहुत दिनों से ढूँढ रहे थे। पुस्तक को बहुत कुछ ध्यान देकर, उलट कर , उन्होंने देखा। कहीं किसी प्रकार का विशेष दोष पुस्तक में उन्हें न मिला। दो- एक छापे की भूलें निकलीं। पर इससे तो सर्वसाधारण की तृप्ति नहीं होती। ऐसी दशा में बेचारे समालोचक महाशय के मन में याद आ गया। वे झटपट मेरी शरण आए। फिर क्या है? पौ बारह! उन्होंने उस पुस्तक की यों समालोचना कर डाली- पुस्तक में जितने दोष हैं, उन सभी को दिखाकर , हम ग्रंथकार की अयोग्यता का परिचय देना , तथा अपने पत्र का स्थान भरना और पाठकों का समय खोना नहीं चाहते। पर दो एक साधारण दोष हम दिखा देते हैं; जैसे इत्यादि-इत्यादि।

देखा! समालोचक साहब का इस समय मैंने कितना बड़ा काम किया।यदि यह अवसर उनके हाथ से निकल जाता तो वे अपने मनमुटाव का बदला क्यों कर लेते! यह तो हुई बुरी समालोचना की बात। यदि भली समालोचना का काम पड़े तो मेरे ही सहारे वे बुरी पुस्तकों की भी ऐसी समालोचना कर डालते हैं, कि वह पुस्तक सर्वसाधारण की आँखों में भली भासने लगती है और उसकी माँग चारों ओर से आने लगती है।

कहाँ तक कहूँ। मैं मूर्ख को पंडित बनाता हूँ । जिसे युक्ति नहीं सूझती उसे युक्ति सुझाता हूँ। लेखक को यदि भाव प्रकाश करने की भाषा नहीं जुटती तो भाषा जुटाता हूँ। कवि को जब उपमा नहीं मिलती, उपमा बताता हूँ। सच पूछिए तो मेरे पहुँचते ही अधूरा विषय भी पूरा हो जाता है। बस क्या इतने से मेरी महिमा प्रगट नहीं होती?

अभ्यास

1. इत्यादि शब्द का जन्म कब हुआ था? इसके माता-पिता के विषय में भी जानकारी दीजिए।
2. ज्योतिषियों ने 'इत्यादि' के विषय में क्या भविष्य फल बतलाया था?
3. इत्यादि में बहुत अच्छा गुण क्या है? स्पष्ट कीजिए।
4. कठिनाई के समय 'इत्यादि' शब्द वक्ता की किस प्रकार सहायता करता है?
5. 'भिन्न-भिन्न भाषाओं के शब्द भण्डार में इत्यादि का नाम भिन्न-भिन्न हैं।' उदाहरण देकर समझाइए।

योग्यता विस्तार

1. इत्यादि शब्द की तरह हिन्दी में और कौन-कौन से शब्द अधिक प्रचलित हैं? सूची बनाइए ।
2. आत्मकथा लिखते समय किन बातों का ध्यान रखा जाता है? शिक्षक से चर्चा करके समझिए। अपने मनपंसन्द विषय पर आत्मकथा शैली में लिखिए।
3. 'पुस्तक' की आत्मकथा संक्षिप्त में लिखिए।
4. 'इत्यादि' शब्द की आत्मकथा के माध्यम से शब्द की उत्पत्ति तथा उपयोग के बारे में बताया गया है। आप भी शब्दों की उत्पत्ति तथा उपयोग के बारे में पता करके लिखिए (कम से कम 10 शब्दों की)।

***